संगीत–गायन

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हदये न च।
म मद्भक्तां यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद।।

न तो मैं वैकुण्ठ में निवास करता हूँ और न योगियों के हृदय में।
हे नारद, मेरे भक्त जहाँ गायन करते हैं वहीं मेरा निवास रहता है।

अध्याय 1

परिभाषाएँ

संगीत सम्पूर्ण चराचर जगत को ईश्वर द्वारा प्रदत्त मनोरम उपहार है। जो जड़ और चेतन को आनंद दे कर अनंतकाल से रसाप्लावित करता रहा है। सम्पूर्ण जीव जगत संगीत की लयात्मक अनुभूति से अनुप्रेरित है फिर चाहे वो हृदय की लयबद्ध धड़कन हो या श्वासों की सरगम। मेघों की गरजन का संगीत जहाँ अवनद्ध वादन की अनुभूति देता है तो मयूर का नर्तन जीवन्त नृत्य का प्रतिरुप है। इसी से शास्त्रों में गीत वाद्य और नृत्य की सम्मिलित अभिव्यक्ति को संगीत की संज्ञा दी गयी है।

यद्यपि गायन–वादन और नृत्य तीनों मिलकर संगीत की सम्यक सृष्टि करते है तथापि ये तीनों विद्याएँ अपने आप में पूर्ण होकर अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखती है। गायन को शास्त्रों में श्रेष्ठतर माना है क्योंकि गायन कला में बिना किसी भौतिक स्थूल आधार के अभिव्यक्ति व अनुभूति होती है। वादन कला को गायन का अनुचर और नृत्य कला गायन व वादन की सम्मिलित हाव भाव पूर्ण अभिव्यक्ति है।

नाद

दो वस्तु अथवा पदार्थ के परस्पर घर्षण अथवा आघात से ''ध्वनि'' उत्पन्न होती है। ध्वनि वह है जो कानों को सुनाई दे। ध्वनि दो प्रकार की होती है –

1. अमधुर ध्वनि (शोर अथवा कोलाहल)

वस्तु अथवा पदार्थ पर आघात से कम्पन्न उत्पन्न होता है जिसे ''आंदोलन'' कहते हैं। वह ध्वनि जिसके कम्पन्न अथवा आंदोलन अनियमित होते हैं – सुनने में कानों को अप्रिय लगती है। यह कर्कश ध्वनि – शोर अथवा कोलाहल कहलाती है। कर्कश ध्वनि संगीत में सर्वथा वर्ज्य है।

2. मधुर ध्वनि (नाद)

वह ध्वनि जिसके कम्पन्न अथवा आंदोलन नियमित होते हैं। कानों को सुनने में प्रिय लगती है। मधुर ध्वनि का सम्बंध संगीत से है।

मधुर एवं कर्णप्रिय संगीतोपयोगी ध्वनि ही नाद कहलाती है।

पं. शारंगदेव ने अपने ग्रंथ संगीत रत्नाकर में 'नाद' के संदर्भ में लिखा है –

नकारं प्राणनामानं दकारमनलं विदुः।
जातः प्राणाग्निसंयोगात्तेन नादोभिधीयते ।। – (संगीत रत्नाकर)

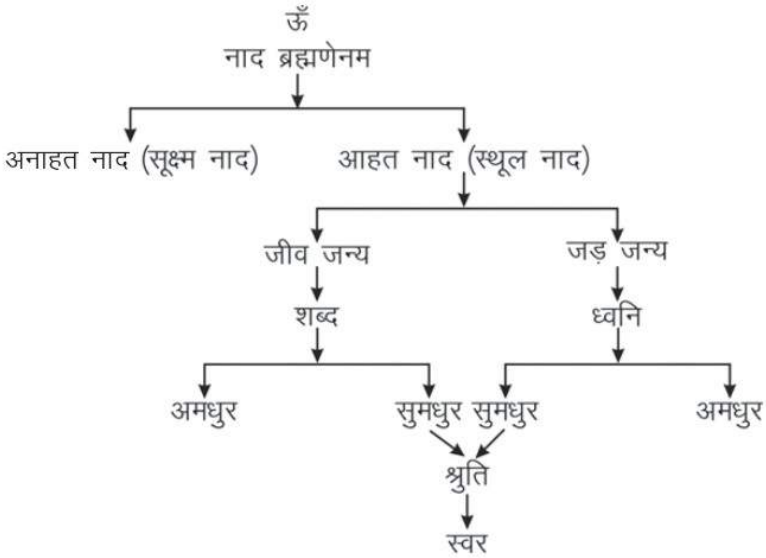

अर्थात नकार, प्राण वायु तथा दकार अग्निवाचक है। अतः प्राण वायु एवं अग्नि के संयोग से जो ध्वनि उत्पन्न होती है उसे ''नाद'' कहते हैं। नाद के दो भेद माने गये हैं –

(1) अनाहत नाद

(2) आहत नाद

(1) अनाहत नाद

स्वयंभू (स्वयं उत्पन्न) ध्वनि है। नाभि से निरन्तर बिना किसी आघात के ध्वनि गुंजायमान होती है। इसी की अनुभूति योग में ''अनहद नाद'' कहलाती है। इसी अनहत नाद की साधना कर योगी, संत, महात्मा ''ब्रह्म'' से साक्षात्कार करते हैं। अनहत नाद की अखण्ड सत्ता शाश्वत है, सनातन है और सर्वव्यापक है जो सृष्टि के प्रारम्भ से अन्त तक विद्यमान रहता है। सम्पूर्ण चराचर जगत अनहत नाद से आवर्त्त है। कबीर ने हठयोग साधना के संदर्भ में अनहत नाद का उल्लेख किया है –

'' आदि नाद अनहत भयो ।
ताते उपज्यो ब्रह्म ''।।

अनहत नाद केवल अनुभूति योग्य है जिसे स्थिर प्रज्ञ होकर समाधि अवस्था में ही सुन सकते हैं। सामान्य अवस्था में कनिष्का ऊंगली को कानों में गहराई तक दबाव पूर्वक डाल कर एकाग्रचित्त शान्त अवस्था में भी अनहत नाद की अनुभूति को सुना जा सकता है।

(2) आहत नाद

आहत नाद के अन्तर्गत वह मधुर ध्वनि आती है जो किसी प्रयास से उत्पन्न की जाती है। संगीत में नाद के इसी स्वरूप का प्रयोग होता है। यह नाद तीन प्रकार से उत्पन्न होता है –

1) वस्तु अथवा पदार्थ के परस्पर आघात द्वारा। उदाहरण –तबले की पूड़ी पर आघात करने पर उत्पन्न नाद।

2)दो वस्तुओं के परस्पर रगड़ अथवा घर्षण से । उदाहरण

–सारंगी, वॉयलिन पर गज को तार पर रगड़े जाने से ध्वनि उत्पन्न होती है।

3) वायु के आवागमन द्वारा । उदाहरण – बाँसुरी, शहनाई, बीन आदि में हवा भरने से ध्वनि उत्पन्न होती है। गले में भी वायु के प्रवेश से स्वर तन्तुओं में कम्पन्न होता है और ध्वनि उत्पन्न होती है।

नाद की विशेषताएँ –'' नाद '' की तीन विशेषताएँ हैं –

(1) नाद का ऊँचा–नीचापन अथवा ''तारता''

नाद की इस विशेषता का सम्बन्ध प्रति सैंकण्ड में होने वाली आन्दोलन संख्या से है। संगीत में सप्तक का आधार नाद का ऊँचा–नीचापन होता है। आधार स्वर ''सा'' से क्रमशः आरोह करने पर रे ग म प ध नी स्वर ऊँचे होते चले जाते हैं तथा तार 'सां' से अवरोह करने पर नी ध प म ग रे स्वर क्रमशः नीचे होते चले जाते हैं। स्वर के ऊँचे होने पर उसकी आन्दोलन संख्या बढ़ती जाती है और नीचे होने पर आन्दोलन संख्या घटती जाती है। उदाहरण के लिये मध्य 'सा' की आन्दोलन संख्या 240 है तो तार 'सां' की आन्दोलन संख्या 480 है।

(2) नाद का छोटा–बड़ापन अथवा ''तीव्रता''

जब वस्तु पर आघात अथवा घर्षण धीरे किया जाता है तो वह नाद कम दूरी तक सुनाई देता है और जब यही आघात अथवा घर्षण ताकत से किया जाता है तो नाद दूर तक सुनाई देता है। उदाहरण के लिये जब हम गुनगुनाते हैं तो ध्वनि को पास बैठा व्यक्ति ही सुन सकता है। वहीं खुले गले का जोरदार गायन दूर तक सुनाई देता है। नाद का यही गुण नाद का छोटा–बड़ापन अथवा ''तीव्रता'' कहलाती है।

(3) नाद की जाति अथवा गुण

नाद की इस विशेषता द्वारा ही हमें यह बोध होता है कि नाद अथवा मधुर ध्वनि किस वाद्य या वस्तु अथवा अपरिचित/परिचित कंठ से उत्पन्न हो रही है। नाद की इसी विशेषता के द्वारा एक नाद से दूसरे नाद के पृथकत्व को पहचाना जा सकता है। उदाहरण के लिये सितार, तबला और बाँसुरी से उत्पन्न मधुर ध्वनि को हम बिना वाद्य देखे ही पहचान लेते हैं अथवा किसी परिचित के कंठ की ध्वनि को उस व्यक्ति को देखे बिना ही पहचान लेते हैं।

श्रुति

'श्रुति' शब्द संस्कृत के ''श्रु'' धातु से बना है जिसका अर्थ है – श्रवण करना।

> **नित्यं गीतोपयोगित्वमभिज्ञेयत्वमप्युत ।**
> **लक्षे प्रोक्तं सुपर्याप्तं संगीतश्रुतिलक्षणम ।।** — **अभिनव राग मंजरी**

अर्थात् – वह मधुर ध्वनि जो गीत में प्रयुक्त की जा सके और एक–दूसरे से अलग तथा स्पष्ट पहचानी जा सके, 'श्रुति' कहलाती है। इसे अधिक स्पष्ट समझने के लिये मान लिजिये, हमने पहले एक नाद लिया, जिसकी आंदोलन–संख्या 100 कंपन प्रति सैकंड है। फिर हमने दूसरा नाद लिया, जिसकी आंदोलन संख्या 101 कंपन प्रति सैकंड है। वैज्ञानिक दृष्टि से तो ये दो भिन्न नाद हैं, परन्तु इनकी कंपन–संख्याओं में इतना कम अंतर है कि किसी कुशल संगीतज्ञ के कान भी इन दोनों नादों को पृथक–पृथक शायद ही पहचान सकेंगे। अब यदि हम दूसरे नाद में क्रमशः एक–एक कंपन्न प्रति सैकंड बढ़ाते जाएँ, तो एक

स्थिति ऐसी आ जाएगी कि ये दोनों नाद अलग–अलग स्पष्ट पहचाने जा सकेंगे या इन दोनों नादों को पृथक–पृथक स्पष्ट सुना जा सकेगा। इसी आधार पर विद्वानों ने श्रुति की परिभाषा यह दी है कि जो नाद एक–दूसरे से पृथक तथा स्पष्ट पहचाना जा सके, उसे 'श्रुति' कहते हैं। एक सप्तक में ऐसे गुणीजन पृथक्–पृथक् सुने जा सकने वाले नादों की संख्या बाईस मानते हैं। उदाहरण के लिए निम्नांकित श्लोक देखिए :

तस्य द्वाविंशतिर्भेद श्रवणात् श्रुतयोर्मताः।
हृदयाभ्यन्तरसंलग्ना नाड्यो द्वाविशतिर्मताः।।   – स्वरमेल कलानिधि

अर्थात– हृदय–स्थान में बाईस नाड़ियाँ हैं। उनके सभी नाद स्पष्ट सुने जा सकते हैं। यही नाद के बाईस भेद माने गए हैं। हमारे संगीत–शास्त्रकार प्राचीन समय से बाईस नाद मानते चले आ रहे हैं। ये नाद क्रमशः एक–दूसरे से ऊँचे चढ़ते चले गए हैं। इन्हीं बाईस नादों को 'श्रुति' कहते हैं।
शास्त्रों में 22 श्रुतियों के नाम इस प्रकार बताये गये हैं –

1.	तीव्रा	9.	क्रोधा	17.	आलापिनी
2.	कुमुद्धति	10.	वज्रिका	18.	मदंती
3.	मंदा	11.	प्रसारिणी	19.	रोहिणी
4.	छन्दोवती	12.	प्रीति	20.	रम्या
5.	दयावती	13.	मार्जनी	21.	उग्रा
6.	रंजनी	14.	क्षिति	22.	क्षोभिणी
7.	रक्तिका	15	रक्ता		
8.	रौद्री	16.	संदीपनी		

किन्तु इन 22 श्रुतियों पर गान करने में सर्वसाधारण को कठिनाई होती है। अतः इन बाईस श्रुतियों में से बारह श्रुतियों को चुनकर गान में प्रयुक्त किया जाने लगा। इन्हीं 12 श्रुतियों पर संगीत के सात शुद्ध और पाँच विकृत स्वर स्थित हैं।

श्रुति स्वर विभाजन

चतुश्चतुश्चतुश्चैव षड़ज मध्यम पंचमा : ।
द्वै द्वै निषाद गांधारो त्रिस्त्रीऋषभधैवतो ।।– श्री मल्ललक्ष्यसंगीत

अर्थात – सा – म – प स्वरों की चार–चार श्रुतियाँ, रे – ध स्वरों में तीन–तीन श्रुतियाँ तथा निषाद और गंधार स्वरों की दो–दो श्रुतियाँ हैं। इसे यों समझ सकते हैं –

सा, म, प,	स्वर	3 स्वर	X	4 श्रुति युक्त	–	12 श्रुति
रे, ध	स्वर	2 स्वर	X	3 श्रुति युक्त	–	6 श्रुति
ग, नि	स्वर	2 स्वर	X	2 श्रुति युक्त	–	4 श्रुति
		योग = 7 स्वर				योग = 22 श्रुति

प्राचीन ग्रंथकार शुद्ध स्वरों को उस स्वर की अन्तिम श्रुति पर स्थापित करते हैं।

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16	17	18	19	20	21	22
			↓			↓		↓				↓				↓			↓		↓
			सा			रे		ग				म				प			ध		नी

आधुनिक ग्रंथकार शुद्ध स्वरों को उनकी पहली श्रुति पर स्थापित करते हैं –

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16	17	18	19	20	21	22
↓				↓			↓		↓				↓				↓			↓	
सा				रे			ग		म				प				ध			नी	

इन्हीं सात स्वरों के मध्य पाँच विकृत स्वर स्थित हैं। इस प्रकार 22 श्रुतियों व स्वरों की अवस्था बताई गयी है।

स्वर

राजते जाति रागादौ स्वयं रञ्जयतीह तान्।
रञजकः श्रोतृमसां मृगान् रञ्जयतीहत्यपि ।।
– गीत रत्नकोष/संगीत राज महाराणा कुम्भाकृत

अर्थात – स्वर स्वयं रंजक है। जाति और राग स्वर से ही शोभित होते हैं। श्रोताओं के मन को और मृगादि (पशुओं) को भी स्वर रंजकता (आनन्द) प्रदान करता है।

कर्णप्रिय ध्वनि की प्रारम्भिक सूक्ष्म अवस्था श्रुति है और अनुरणात्मक (गुंजित) स्थिर स्वरूप ''स्वर'' कहलाता है। जो श्रुति से ही उत्पन्न होता है।

श्रुतयः स्युः स्वराभिनः श्रवणेत्वने हेतुना ।
अहिकुण्डलवत्तत्र भेदोक्ति शास्त्रसम्मता ।। – संगीत पारिजात

अर्थात – श्रुति और स्वर में '' सर्प '' और '' कुण्डली '' के समान भेद है 22 श्रुतियों में से जब किसी ''श्रुति'' का प्रयोग राग में होता है तो वह सर्प की भाँति क्रियाशील हो जाती है और अप्रयोगित होने की दशा में वह कुण्डली की भाँति सुप्तावस्था में श्रुति की संज्ञा पाती है। कुण्डली के अन्दर जिस प्रकार सर्प रहता है, उसी प्रकार श्रुतियों के अन्दर ''स्वर'' स्थित है। एक सप्तक में 7 शुद्ध और पांच विकृत कुल 12 स्वर माने गये हैं –

शुद्ध स्वर – स्वर जब अपने निश्चित स्थान पर रहता है तो ''शुद्ध स्वर'' कहलाता है। शुद्ध स्वर 7 माने गये हैं –

षड़ज – सा
ऋषभ – रे
गंधार – ग
मध्यम – म
पंचम – प
धैवत – ध
निषाद – नी

संगीतानुरागी महाराणा कुम्भा

विकृत स्वर – स्वर अपनी निश्चित अथवा शुद्ध अवस्था को छोड़कर विलकृत कहाता है। विकृत स्वरों की संख्या 5 हैं–

कोमल स्वर : रे , ग , ध , नी

तीव्र स्वर : म

अचल स्वर – सा और प अचल स्वर कहलाते हैं जो कभी भी अपना स्थान नहीं छोड़ते हैं।

रागों में स्वरों के चार रूप प्रयुक्त होते हैं –

(1) वादी स्वर –

रागका प्रधान स्वर है जिसपर राग का स्वरूप निश्चित रहता है। इस स्वर का राग में ''राजा'' के समान महत्त्व होता है।

(2) संवादी स्वर –

रागमें इस स्वर को ''मंत्री'' के समान महत्त्व दिया गया है जो वादी के पश्चात् दूसरा महत्त्वपूर्ण स्वर है। संवादी स्वर का वादी स्वर से सदैव 'संवाद' रहता है जो प्रायः 9 अथवा 13 श्रुतियों का होता है। यथा सा – प, सा – म, रे – ध, ग – नि । यह संवाद राग में रंजकता लाता है।

(3) अनुवादी स्वर –

इस स्वर का महत्त्व ''अनुचार'' के समान होता है। वादी और संवादी स्वर के अतिरिक्त राग में लगने वाले सभी स्वर अनुवादी कहलाते हैं।

(4) विवादी स्वर –

यह राग का वर्जित स्वर है जो राग को हानि पहुँचाता है किन्तु अल्पमात्रा में कुशलतापूर्वक प्रयोग कभी–कभी सौन्दर्यवृद्धि भी करता है।

सप्तक

'सप्तक' का अर्थ है 'सात'। क्योंकि एक स्थान पर सात शुद्ध स्वर निवास करते हैं, अतः इसका नाम 'सप्तक' हुआ। ध्वनि की साधारण उँचाई में जब मनुष्य बात करता है अथवा 'अ.........' इस प्रकार आलाप लेता है, तो उसे 'मध्य–सप्तक' कहते हैं, किन्तु जब कभी नीचे आवाज़ ले जाने की आवश्यकता होती है, तो वहाँ 'मंद्र–सप्तक' के स्वर काम देते हैं। और, जब मध्य–सप्तक से भी ऊँचा गाने की आवश्यकता पड़ती है, तब 'तार–सप्तक' के स्वर प्रयुक्त होते हैं। इस प्रकार सप्तक तीन प्रकार के होते हैं।

मंद्र–सप्तक के स्वरों को बोलने में हृदय पर, मध्य–सप्तक के स्वरों को बोलने में कंठ पर और तार–सप्तक के स्वरों को बोलने में तालू पर ज़ोर लगाना पड़ता है। नाद, अर्थात आवाज़ की ऊँचाई और निचाई के आधार पर उसके मंद्र, मध्य और तार, ये तीन भेद माने जाते हैं। इनको 'नाद–स्थान' कहते हैं। इन तीन नाद–स्थानों में एक–एक सप्तक मानकर क्रमशः मंद्र–सप्तक, मध्य–सप्तक और तान–सप्तक कहलाते हैं। इस प्रकार तीन सप्तक होते हैं; यथा :–

प्रथमं सप्तकं मंद्र, द्वितीयं मध्यमं स्मृतम्।
तृतीय तारसंज्ञं स्यादेवं स्थानत्रयं मतम।।

मंद्र–सप्तक :

जिस सप्तक के स्वरों की आवाज़ सबसे नीची हो अथवा मध्य–सप्तक से आधी हो, उसे 'मंद्र–सप्तक' कहते हैं। भातखंडे–पद्धति में इसके स्वरों की पहचान के लिये स्वरों के नीचे बिन्दु लगाया जाता है।

जैसे – सा़ रे़ ग़ म़ प़ ध़ नि़ (मंद्र –सप्तक)

मध्य–सप्तक :

मंद्र–सप्तक से दुगुनी आवाज़ होने पर 'मध्य–सप्तक' कहलाता हैं। इसके स्वरों पर कोई चिन्ह नहीं होता है

जैसे – सा रे ग म प ध नि (मध्य–सप्तक)

तार–सप्तक :

मध्य–सप्तक से दुगुनी ऊँची आवाज़ होने पर 'तार–सप्तक' कहलाता है। इसे उच्च–सप्तक भी कहते हैं। इसकी पहचान के लिये स्वरों के ऊपर बिन्दु लगा दिया जाता है ।

जैसे – सां रें गं मं पं धं निं (तार–सप्तक)

यद्यपि एक सप्तक में सात स्वर कहे गये हैं तथापि कोमल–तीव्र रूप करके स्वरों की संख्या एक सप्तक में बारह हो जाती है। बारह–बारह स्वरों के इस प्रकार सप्तक होते हैं :

अलंकार

प्राचीन ग्रंथकार 'अलंकार' की परिभाषा इस प्रकार करते हैं:

विशिष्टवर्णसंदर्भमलंकार प्रचक्षते

अर्थात्– कुछ नियमित वर्ण–समुदायों को 'अलंकार' कहते हैं। 'अलंकार' का अर्थ है 'आभूषण' या 'गहना'। जिस प्रकार आभूषण शारीरिक शोभा बढ़ाते हैं, उसी प्रकार अलंकारों के द्वारा गायन की शोभा बढ़ जाती है। 'अभिनव रागमंजरी' में लिखा है :

शशिनारहितेव निशाबिजलेव नदी लता विपुष्पेव।
अविभूषिते कांता गीतिरलंकारहीना स्यात्।।

अर्थात्– जैसे चन्द्रमा के बिना रात्रि, जल के बिना नदी, फूलों के बिना लता तथा आभूषणों के बिना स्त्री शोभा नहीं पाती, उसी प्रकार अलंकार–बिना गीत भी शोभा को प्राप्त नहीं होते।

अलंकार को 'पलटा' भी कहते हैं। गायन सीखने से पहले विद्यार्थियों को अलंकार सिखाये जाते हैं, क्योंकि इसके बिना न तो अच्छा स्वर–ज्ञान होता है और न उन्हें आगे संगीत–कला में सफलता ही मिलती है। अलंकारों से राग–विस्तार में भी काफी सहायता मिलती है। अलंकारों के द्वारा राग की सजावट करके उसमें चार चाँद लगाए जा सकते हैं। तानें इत्यादि भी अलंकारों के आधार पर ही बनती हैं, जैसे 'सारे, गरे, गम, गम प –। रेग रेग मप मप ध –' इत्यादि।

अलंकार वर्ण–समुदायों में ही होते हैं। उदाहरण के लिए इस वर्ण–समुदाय को लीजिए – 'सा रे ग सा'। इसमें आरोही–अवरोही, दोनों वर्ण आ गए हैं। यह एक सीढ़ी मान लीजिए। अब इसी आधार पर आगे बढ़िए और पिछला स्वर छोड़कर आगे का स्वर बढ़ाते जाइए; रे ग म रे यह दूसरी सीढ़ी हुई; ग म प ग यह तीसरी सीढ़ी हुई। इसी प्रकार बहुत से अलंकार तैयार किए जा सकते हैं; शुद्ध स्वरों के अलावा कोमल–तीव्र स्वरों के अलंकार भी तैयार किए जा सकते हैं, किन्तु उनमें यह ध्यान रखना आवश्यक होता है कि जिस राग में जो स्वर लगते हैं, वे ही स्वर उस राग के अलंकारों में मिल जाएँ। यथा शुद्ध स्वरों के कुछ अलंकार इस प्रकार हैं –

(1)	आरोह	–	सारे–सारेग, रेग–रेगम, गम–गमप, मप–मपध, पध–पधनी, धनि, धनिसां
	अवरोह	–	सांनि–सांनिध, निध–निधप, धप–धपम, पम–पमग, मग–मगरे, गरे–गरेसा
(2)	आरोह	–	सारेग, रेगम, गमप, मपध, पधनी, धनिसां
	अवरोह	–	सांनिध, निधप, धपम, पमग, मगरे, गरेसा
(3)	आरोह	–	सारेगम, रेगमप, गमपध, मपधनि, पधनिसां
	अवरोह	–	सांनिधप, निधपम, धपमग, पमगरे, मगरेसा
(4)	आरोह	–	सारेगमप, रेगमपध, गमपधनि, मपधनिसां
	अवरोह	–	सांनिधपम, निधपमग, धपमगरे, पमगरेसा
(5)	आरोह	–	सागरेसा, रेमगरे, गपमग, मधपम, पनिधप, धसांनिध, निरेंसांनि, सांगरेंसां
	अवरोह	–	सांगरेंसां, निरेंसांनि, धसांनिध, पनिधप, मधपम, गपमग, रेमगरे, सागरेसा

राग

योऽयमं ध्वनिविशेषस्तु स्वरवर्णविभूषितः ।
रंजको जनचित्तानां स रागः कथितो बुधैः ।।

अर्थात – ध्वनि की वह विशिष्ट रचना जिसमें स्वर तथा वर्ण के कारण सौंदर्य हो, जो मनुष्य के चित्त वर्ण का रंजन करे अर्थात जो श्रोताओं के मन को प्रसन्न करे, बुद्धिमान लोग उसे 'राग' कहते हैं। प्राचीन ''जाति गायन'' का ही परिवर्तित स्वरूप राग गायन है। रागदारी संगीत भारतीय संगीत का प्रधान वैशिष्ट्य है। राग में निम्नलिखित बातों का होना जरूरी है –

1) राग किसी थाट से उत्पन्न होना चाहिए ।
2) किसी भी राग में षड़ज स्वर सर्वथा वर्जित नहीं होना चाहिये क्योंकि यह सप्तक का आधार स्वर होता है। साथ ही म, प दोनों स्वर एक राग में एक साथ वर्जित नहीं होने चाहिए।
3) उसमें स्वर तथा वर्ण आरोह–अवरोह हो एवं वादी तथा संवादी योजना होनी आवश्यक है।
4) रंजकता यानी सुन्दरता हो।
5) राग में कम से कम पाँच स्वर होने चाहिए।

जाति

ठाठ के स्वरों में से ही राग तैयार होते हैं। ठाठ में सात स्वर होने जरूरी हैं, किन्तु राग में यह जरूरी नहीं कि सात ही स्वर हों। अतः किसी ठाठ के स्वरों में से पांच, छह या सात स्वरों को लेकर जब कोई राग तैयार किया जाता है, तो जितने स्वर उस ठाठ में से लिए जाते हैं, उन्हीं के आधार पर उसकी जाति निश्चित की जाती है। इस प्रकार स्वरों की संख्या के अनुसार रागों की तीन जातियाँ मानी गई हैं; जिन्हें औडव, षाड़व और सम्पूर्ण कहते हैं –

औडव राग

जब किसी ठाठ में से कोई दो स्वर घटाकर (वर्जित करके) कोई राग उत्पन्न होता है, अर्थात् जब किसी राग में पाँच स्वर लगते हैं, तो उसे 'औड़व राग' कहते हैं; जैसे भूपाली, मालकौंस इत्यादि। ध्यान रहे कि

'सा' स्वर वर्जित नहीं किया जाता।

षाड़व राग

किसी ठाठ में से केवल एक स्वर वर्जित करके जब कोई राग उत्पन्न होता है, अर्थात् जब किसी राग में छह स्वर प्रयुक्त होते हैं, तो उसे 'षाड़व राग' कहते हैं; जैसे मारवा, पूरिया इत्यादि।

सम्पूर्ण राग

ठाठ में कोई स्वर न घटाकर सातों स्वर जिस राग में लगते हैं, उसे 'सम्पूर्ण राग' कहते हैं; जैसे यमन, बिलावल, भैरव और भैरवी इत्यादि। ऊपर बताई हुई तीन जातियों के रागों के आरोह तथा अवरोह में क्रमशः पाँच–छह स्वर हैं, लेकिन कुछ राग ऐसे भी हैं, जिनके आरोह में छह तथा अवरोह में पाँच स्वर लगते हैं अथवा आरोह में सात और अवरोह में पाँच स्वर लगते हैं। ऐसे रागों को पहचानने के लिए ग्रंथकारों ने उपर्युक्त तीन जातियों में से हर एक जाति की तीन–तीन जातियाँ और बना दी है। इस तरह नौ प्रकार की जातियाँ बनी –

सम्पूर्ण	1) सम्पूर्ण–सम्पूर्ण	2) सम्पूर्ण–षाड़व	3)सम्पूर्ण–औड़व
षाड़व	1) षाड़व–सम्पूर्ण	2) षाड़व–षाड़व	3) षाड़व–औड़व
औड़व	1) औड़व–सम्पूर्ण	2) औड़व–षाड़व	3) औड़व–औड़व

इस प्रकार तीन जातियों से नौ उपजातियों की उत्पत्ति हुई। अब इनका पूर्ण विवरण देखिए –

सम्पूर्ण–सम्पूर्ण :

जिस राग के आरोह में सात स्वर हों और अवरोह में भी सात स्वर लगते हों, उसे सम्पूर्ण–सम्पूर्ण जाति का राग कहेंगे।

सम्पूर्ण–षाड़व :

जिस राग के आरोह में सात स्वर और अवरोह में छह स्वर लगते हों, उसे सम्पूर्ण–षाड़व जाति का राग कहेंगे।

सम्पूर्ण–औड़व : जिसके आरोह में सात स्वर और अवरोह में पाँच स्वर हों।

षाड़व–सम्पूर्ण : जिसके आरोह में छह स्वर और अवरोह में सात स्वर हों।

षाड़व–षाड़व : जिसके आरोह में छह स्वर हो तथा अवरोह में भी छह स्वर हो।

षाड़व–औड़व : जिसके आरोह में छह स्वर और अवरोह में पाँच स्वर हो।

औड़व–सम्पूर्ण : जिसके आरोह में पाँच स्वर और अवरोह में सात स्वर हो।

औड़व–औड़व : जिसके आरोह में भी पाँच स्वर हों तथा अवरोह में भी पाँच स्वर लगते हो।

रागों की इन जातियों से राग–संख्या मालूम हो जाती है। देखिए, उपर्युक्त नौ जातियों से किस प्रकार किसी एक ठाठ द्वारा 484 राग तैयार हुए।

सम्पूर्ण–सम्पूर्ण : इससे केवल एक राग ही बन सका, क्योंकि आरोह में भी सात स्वर हैं और अवरोह में भी सात स्वर हैं।

सम्पूर्ण–षाड़व : इस जाति के छह राग बन सकते हैं, क्योंकि आरोह तो सम्पूर्ण रखते जाइए और अवरोह में प्रत्येक बार एक स्वर बदलकर छोड़ते जाइए।

सम्पूर्ण–औड़व : इसके आरोह में सात स्वर रखते जाइए और अवरोह में दो स्वर (बदल–बदलकर) जोड़ते जाइए, तो पन्द्रह राग बनें।

षाड़व–सम्पूर्ण : आरोह में छह स्वर होने के कारण, छह बार एक–एक स्वर बदलकर छोड़ने से इसके भी छह राग बने।

षाड़व–षाड़व : इसके आरोह में छह बार, एक–एक स्वर बदलकर रखा, तो छह टुकड़े हुए। इसी प्रकार अवरोह में भी ऐसा ही किया, तो 6×6 = 36राग इस जाति से बनें।

षाड़व–औड़व : इस जाति में 90 राग हो सकते हैं, क्योंकि आरोह में एक स्वर छोड़ने से छह और अवरोह में दो–दो स्वर छोड़ने से पन्द्रह अर्थात् 15×6 = 90राग बनें।

औड़व–सम्पूर्ण : आरोह में दो स्वर छोड़ने से पन्द्रह प्रकार बने और अवरोह इसका सम्पूर्ण है, अतः इस जाति से पन्द्रह राग पैदा हुए।

औड़व–षाड़व : क्योंकि इसके आरोह में प्रतिबार कोई से दो स्वर छोड़ने पड़े तो पन्द्रह प्रकार बने और अवरोह में एक स्वर प्रतिबार छोड़ना पड़ा तो छह प्रकार बने, इसलिए 15×6 = 90 राग इस जाति से उत्पन्न हुए।

औड़व–औड़व : इस जाति के सबसे अधिक अर्थात् दो सौ पच्चीस राग हो सकते हैं, क्योंकि आरोह में प्रतिबार दो स्वर छोड़ने से पन्द्रह प्रकार बने और अवरोह में भी ऐसे ही दो स्वर छोड़ने से पन्द्रह प्रकार बने, तो 15×15 = 225 राग तैयार हुए ।

इस प्रकार एक ठाठ की नौ जातियों से चार सौ चौरासी (484) राग बने, जो नक्शे द्वारा स्पष्ट किए जाते हैं।

सं.	जाति	आरोह के स्वर	अवरोह के स्वर	राग तैयारहो सकते हैं
1.	सम्पूर्ण–सम्पूर्ण	7	7	1
2.	सम्पूर्ण–षाड़व	7	6	6
3.	सम्पूर्ण–औड़व	7	5	15
4.	षाड़व–सम्पूर्ण	6	7	6
5.	षाड़व–षाड़व	6	6	36
6.	षाड़व–औड़व	6	5	90
7.	औड़व–सम्पूर्ण	5	7	15
8.	औड़व–षाड़व	5	6	90
9.	औड़व–औड़व	5	5	225

इस प्रकार एक ठाठ की नौ जातियों से उत्पन्न रागों का कुल जोड़ 484 (चार सौ चौरासी) होता है।

जब एक ठाठ से चार सौ चौरासी राग तैयार हो सकते हैं, तो उत्तरी संगीत–पद्धति के दस ठाठों से 484×10 = 4840 राग बने और दक्षिण संगीत–पद्धति के बहत्तर ठाठों से 484×72 = 34848 राग तैयार हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ और भी राग केवल वादी स्वर को बदल देने से उत्पन्न हो सकते हैं। इस प्रकार यद्यपि रागों की संख्या और भी अधिक बढ़ सकती है; किन्तु प्रचार में दो सौ रागों से अधिक दिखाई नहीं देते; क्योंकि राग में रंजकता होनी आवश्यक है। इस बंधन के कारण राग संख्या मर्यादित–सी हो जाती है।

थाट

'मेल' (ठाठ) स्वरों के उस समूह को कहते हैं, जिससे राग उत्पन्न हो सके। नाद से स्वर, स्वरों से सप्तक और सप्तक से ठाठ तैयार होते हैं –

मेलःस्वरसमूहः स्याद्रागव्यंजनशक्तिमान्

एक सप्तक में शुद्ध–विकृत (कोमल–तीव्र) मिलकर कुल बारह स्वर होते हैं। इन्हीं स्वरों की सहायता से ठाठ तैयार होते हैं और 'ठाठ' को ही संस्कृत में 'मेल' कहते हैं।

ठाठ के विषय में कुछ महत्त्वपूर्ण बातें –

(1) यद्यपि ठाठ बारह स्वरों से तैयार किए गए हैं, किन्तु ठाठ में सात स्वर ही लिए जाते हैं। ये सात स्वर उन्हीं बारह स्वरों में से चुन लिए जाते हैं।

(2) वे सात स्वर 'सा, रे, ग, म, प, ध, नि,' इसी क्रम से और इन्हीं नामों से होने चाहिए। यह हो सकता है कि उपर्युक्त सात स्वरों में से कोई कोमल या कोई तीव्र ले लिया जाए, किन्तु सिलसिला यही रहेगा। राग में ये स्वर इस क्रम से हों या न हों, किन्तु ठाठ में इस क्रम का होना आवश्यक है। राग में सात स्वरों से कम भी हो सकते हैं, किन्तु ठाठ में सात स्वरों का होना जरूरी है। अर्थात् ठाठ का सम्पूर्ण होना आवश्यक है, क्यों कि बहुत से ऐसे राग हैं, जिनमें सातों स्वर लगते हैं, इसलिए ठाठ में सातों स्वरों का होना आवश्यक है; अन्यथा उससे सम्पूर्ण जाति के राग तैयार करने में असुविधा होगी।

(3) ठाठ में केवल आरोह ही होता है, इसमें आरोह–अवरोह, दोनों का होना आवश्यक नहीं है।

(4) ठाठ में एक ही स्वर के दो रूप (कोमल व तीव्र) साथ–साथ नहीं आ सकते हैं।

(5) ठाठ में रंजकता का होना आवश्यक नहीं है, अर्थात् यह आवश्यक नहीं कि ठाठ सुनने में कानों को अच्छा ही लगे। कारण, ठाठ में क्रमानुसार सात स्वर लेना अनिवार्य होता है और कभी–कभी एक स्वर के दो स्वरूप (कोमल–तीव्र) भी साथ–साथ आ सकते हैं; इसलिए प्रत्येक ठाठ में रंजकता का रहना सम्भव है ही नहीं क्यों कि थाट को गाया अथवा बजाया नहीं जाता ।

(6) ठाठ को पहचानने के लिए, उसमें से उत्पन्न हुए किसी प्रमुख राग का नाम दे दिया जाता है; जैसे – असावरी एक प्रसिद्ध राग है, इसलिए असावरी राग के स्वरों के अनुसार जो ठाठ बना, उस ठाठ का नाम भी 'असावरी ठाठ' रख दिया। इसी प्रकार अन्य ठाठों के नाम रखे गए। प्रत्येक ठाठ में स्वर तो केवल सात ही होते हैं, किन्तु उनके स्वरों में कोमल, तीव्र का अन्तर पड़ सकता है। इस अन्तर से ही तरह–तरह के ठाठ बना लिए है।

यमन, बिलावल और खमाजी; भैरव पूरवि, मारवा, काफ़ी ।
आसा, भैरवी, तोड़ी बखाने; दशमित ठाठ 'चतुर' गुनि मानें ।।

पंडित भारखण्डे जी की इस कविता से दस ठाठों के नाम आसानी से याद हो जाते हैं। नीचे दस ठाठों में लगने वाले कोमल व तीव्र स्वर इस प्रकार हैं –

दस ठाठों के सांकेतिक चिन्ह –

यमन या कल्याण ठाठ	:	सा	रे	ग	म॑	प	ध	नि	सां
बिलावल ठाठ	:	सा	रे	ग	म	प	ध	नि	सां
खमाज ठाठ	:	सा	रे	ग	म	प	ध	नि॒	सां
भैरव ठाठ	:	सा	रे॒	ग	म	प	ध॒	नि	सां
पूर्वी ठाठ	:	सा	रे॒	ग	म॑	प	ध॒	नि	सां
मारवा ठाठ	:	सा	रे॒	ग	म॑	प	ध	नि	सां
काफ़ी ठाठ	:	सा	रे	ग॒	म	प	ध	नि॒	सां
आसावरी ठाठ	:	सा	रे	ग॒	म	प	ध॒	नि॒	सां
भैरवी ठाठ	:	सा	रे॒	ग॒	म	प	ध॒	नि॒	सां
तोड़ी ठाठ	:	सा	रे॒	ग॒	म॑	प	ध॒	नि	सां

लय

सम्पूर्ण ब्रह्मांड लयात्मक है। प्रकृति का प्रत्येक उपादान लयात्मक अनुभूति से झंकृत हैं। क्षिति, जल, पावक, गगन, समीरा, सभी कुछ लयबद्ध अस्तित्व को अपने आप में समेटे हुए हैं। प्रकृति को देखिये उसका प्रत्येक क्रियाकलाप लयबद्ध है – भोर का उगता हुआ सूर्य, चाँदनी बिखेरता चाँद, टिमटिमाते तारे, सभी की मार्मिक अनुभूति लयात्मक है। मेघों का गर्जन हो या झरनों का कलरव, कोयल की कूक हो या पपीहे की हूक, सूखे पत्तों की मर्मराहट हो या सनसनाती वासंती पवन, सभी की क्रियाएँ लयात्मक है। जहाँ तक मनुष्य जीवन का संबंध है – तो फिर साँसों की सरगम हो या हृदय की धड़कन, इनकी लयात्मकता ही प्राणी मात्र में प्राणों का संचार करती है। इसीलिये हम संगीत साधक सदैव नादरूपा रसरंजनी माँ सरस्वती से सदैव इसी नित्य सुख की कामना करते हैं कि वो हमारी वाणी में सुर और प्राणों में लय का स्पंदन कभी भी विश्रृंखल ना होने दे। हमारे नित्य प्रति के व्यवहार में सदैव कोई ना कोई लय अवश्य रहती है।

संगीत में समान गति को लय कहते हैं। व्यापक अर्थ में समय की किसी भी गति को लय कहते हैं। लय की शास्त्रीय व्याख्या इस प्रकार हो सकती है– ''ताल में एक क्रिया और दूसरी क्रिया के बीच के विश्रान्ति का काल, जो पहली क्रिया का विस्तार है – '' लय '' कहलाता है। अर्थात कलाओं के मध्य स्थित कला की विश्रान्ति युक्त क्रिया को लय कहा जाता है। विश्रान्ति के घटने और बढ़ने से लय में विविधता आती है और इसी विविधता को तीन प्रकार से बाँटा जा सकता है। लय के तीन प्रकार इस प्रकार है –

(1)विलंबित लय –

विलम्ब का अर्थ है '' देर ''। जिस लय की चाल बहुत धीमी हो उसे विलम्बित लय कहते हैं। इसकी गति मध्य लय से ठीक दुगुनी होती है

(2)मध्य लय –

मध्य लय की गति साधारण होती है। मध्य का अर्थ है – '' बीच ''। अर्थात जिस लय की चाल विलम्बित से तेज और द्रुत से कम हो उसे '' मध्य लय '' कहते हैं।

(3)द्रुत लय –

''द्रुत'' का अर्थ है ''तेज'' । जिस लय की चाल विलम्बित लय से चौगुनी या मध्यलय से दुगुनी हो उसे द्रुत लय कहते हैं।

साधारणतया मध्य लय घड़ी के एक सैकण्ड के बराबर, विलम्बित लय इसकी आधी और द्रुत लय इसकी दुगुनी मानी जाती है। स्थूल रूप से कहा जा सकता है कि विलम्बित लय की एक मात्रा दो सैकण्ड के बराबर तथा द्रुत लय की एक मात्रा आधे सैकण्ड के बराबर होती है। व्यवहार में इसे पालन करने का कोई कठोर नियम नहीं है। कोई भी गायक अथवा वादक अपनी आवश्यकतानुसार लय को अधिक विलम्बित अथवा द्रुत कर सकता है।

ताल

संगीत में गायन, वादन और नृत्य के समय को नापने का माध्यम ताल है। जिस प्रकार भाषा में व्याकरण, भवन के लिये नींव की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार संगीत में ताल की आवश्यकता होती है। गायन–वादन व नृत्य की शोभा ताल से ही है। यथा –

ताल स्तल प्रतिष्ठा यामिति घायोर्धजि स्मृतिः ।
गीतं, वाद्यं तथा नृत्यं यतऽस्ताले, प्रतिष्ठितम ।।

ताल शब्द 'तल' धातु (प्रतिष्ठा, स्थिरता) से बना है। संगीत में ताल का विशेष स्थान है, क्योंकि ताल ही गीत, वाद्य और नृत्य को आधार प्रदान करता है।

ताल इस बात की एक कसौटी है कि गाना सही है या गलत। ताल के बिना संगीत की कल्पना भी नहीं की जा सकती । संगीत में समय का माप मात्रा द्वारा किया जाता है। भिन्न–भिन्न मात्रानुसार भिन्न–भिन्न तालों की रचना की गई है।

विभिन्न मात्राओं के विविध समूहों को 'ताल' कहते हैं। ताल को मापने का माध्यम वाद्य है, जैसे – तबला, पखावज, मृदंग, ढोलक इत्यादि। ताल अनेक मात्राओं की होती है। विभाग द्वारा ताल का स्वरूप बनता है और भिन्न–भिन्न तालों की रचना होती है। भारतीय शास्त्रीय, उपशास्त्रीय तथा सुगमसंगीत की निश्चित तालें हैं।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु

- मधुर एवं कर्णप्रिय संगीतापयोगी ध्वनि ''नाद'' कहलाती है।
- वह मधुर ध्वनि जो गीत में प्रयुक्त की जा सके तथा एक दूसरे से अलग एवं स्पष्ट पहचानी जा सके ''श्रुति'' कहलाती है।
- क्रमानुसार सात स्वरों के समूह को सप्तक कहते हैं।
- नियमित वर्ण–समुदायों को अलंकार कहते हैं।
- स्वर और वर्ण से विभूषित वह विशिष्ट रचना जो जन चित्त का रंजन कर सके ''राग'' कहलाती है।
- स्वरों का वह समूह जिससे राग उत्पन्न हो सके ''थाट'' कहलाता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न

1. ''नाद'' कितने प्रकार के होते हैं ?
   (अ) 4 (ब) 2 (स) 3 (द) 5
2. किसी प्रयास से उत्पन्न होनेवाली मधुर ध्वनि क्या कहलाती है ?
   (अ) आहत नाद (ब) अनहत नाद (स) कोलाहल (द) उपरोक्त सभी
3. ''नाद'' की जाति का सम्बन्ध किससे है ?
   (अ) तारता से (ब) तीव्रता से (स) गुण से (द) उपरोक्त सभी
4. ''श्रुतियों '' की संख्या कितनी है ?
   (अ) 20 (ब) 44 (स) 22 (द) 10
5. रे और ध की कितनी श्रुतियाँ हैं ?
   (अ) 2 (ब) 3 (स) 4 (द) 5
6. स्वरों की कुल संख्या कितनी है ?
   (अ) 8 (ब) 10 (स) 12 (द) 14
7. ग और नी की कितनी श्रुतियाँ हैं ?
   (अ) 2 (ब) 5 (स) 6 (द) 22

8. राग में कम से कम कितने स्वर आवश्यक है ?
(अ) 7 (ब) 6 (स) 10 (द) 5
9. राग की कितनी जातियाँ और कितनी उप जातियाँ हैं ?
(अ) 3–9 (ब) 4–7 (स) 5–10 (द) 10–10
10. ''थाट'' में कितने स्वर होने आवश्यक है ?
(अ) 7 (ब) 9 (स) 5 (द) 6

लघुत्तरात्मक प्रश्न

1. ''नाद'' को परिभाषित कीजिये ।
2. ''श्रुति'' को परिभाषित कीजिये ।
3. ''अलंकार'' किसे कहते हैं ?परिभाषित कीजिये ।
4. ''सप्तक'' की परिभाषा लिखिये ।
5. ''राग'' को परिभाषित कीजिये ।
6. ''थाट'' किसे कहते हैं ?
7. 22 श्रुतियों के नाम लिखिये ।
8. औड़व जाति के राग कौनसे हैं ?
9. एक थाट की नौ जातियों से कितने राग तैयार हो सकते हैं ?
10. ''ताल'' किसे कहते हैं ?

निबन्धात्मक प्रश्न

1. ''नाद'' की उत्पत्ति एवं भेद को विस्तारपूर्वक लिखिये ।
2. श्रुति और स्वर में अन्तर बताते हुए श्रुति–स्वर विभाजन को विस्तार से समझाइये।
3. ''राग'' की व्याख्या करते हुए ''राग जाति'' प्रकार पर विस्तृत लेख लिखिये।
4. प. भातखंडे के प्रमुख दस थाटों का विस्तृत वर्णन करते हुए ''थाट'' की सम्यक व्याख्या कीजिये ।
5. ''ताल'' और ''लय'' में अन्तर स्पष्ट करते हुए ''ताल'' के महत्त्व पर लेख लिखिये ।

वीणा वादन तत्वज्ञ श्रुति जाति विशारदः।
तालज्ञश्चा प्रयासेन मोक्षमार्गं निगच्छति।।

वीणा वादन का तत्व जानने वाला, श्रुति और जातियों में विशारद तथा ताल का ज्ञाता बिना प्रयास ही मोक्ष प्राप्त कर लेता है।